गीली आँखें गीले गीत

शिवशंकर वशिष्ठ

गीली आँखें गीले गीत

[कविता संग्रह]

कवि
शिवशंकर वशिष्ठ
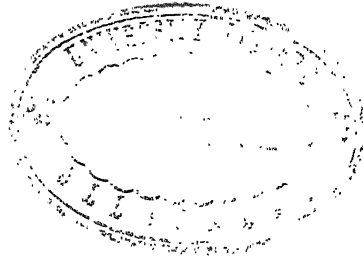
दिल्ली पुस्तक सदन
नई दिल्ली : पटना

मूल्य : तीन रुपये

स्वर्गीय पितृश्री चण्डीप्रसाद वशिष्ठ को,
जिनकी अमानुषिक हत्या का दारुण दृश्य,
गत पन्द्रह वर्षों से मेरी आँखों को गीला किये
हुए है ....

—शिवशंकर वशिष्ठ
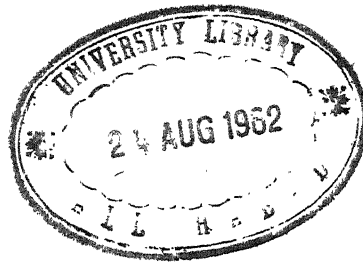
जग कहता कल्पना अनूठी
मेरी व्यथा छन्द बन फूटी

अपनी बात

'प्रत्यूप' के बाद 'गीली आँखें गीले गीत' मेरी कविताओं का दूसरा संग्रह है। माँ भारती का मन्दिर बहुत ऊँचाई पर है। साधना के सहारे उस ऊँचाई तक पहुँ ने का दृढ़ संकल्प लेकर, मैं सीढ़ियाँ चढ़ता जा हूँ। आत्म-वि वास साथ है इसलिये सफलता के प्रति सन्देह नहीं।

'प्रत्यूप' को हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकारों का स्नेह प्राप्त हुआ। आशा से कहीं अधिक छात्र जगत् में 'प्रत्यूप' का खुले हृदय से स्वागत किया गया। हिन्दी के पाठकों ने भी मेरी इस कृति को क्रय करने में किसी प्रकार की कृपणता नहीं दिखलाई। और माँ भारती के मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़ने वाले इस कवि के लिये इससे बड़े गौरव की दूसरी कौन सी बात हो सकती है।

'गीली आँखें गीले गीत' की रचनायें काव्य प्रेमियों के लिये अपरिचित नहीं हैं। बम्बई, दिल्ली और उत्तर प्रदेश के अनेकों कवि-सम्मेलनों, राष्ट्र भापा की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं तथा आकाशवाणी के माध्यमों से यह रचनायें उनके सामने आ चुकी हैं।

आज की कविता कई नामों से पुकारी जाती है। राजनीति की तरह हिन्दी कविता में भी अनेकों वाद घर कर चुके हैं। सम्भवतः इस कारण आज के इस गद्य युग में पद्य का मूल्यांकन उचित रूप से नहीं हो पा रहा। बहुधा सुना भी जाता है कि आज का युग कविता का युग नहीं। मैं इस मत को नहीं मानता। कविता एक बहुत बड़ी साधना है और आज आदमी के पास साधना करने का समय कहाँ? फिर भी साधना का पथ अनन्त है, उसकी महत्ता शाश्वत है। इसी आदर्श को सामने रखकर मैं निष्ठा और संयम के साथ साधना कर रहा हूँ, कविता लिख रहा हूँ।

बम्बई का जीवन बहुत व्यस्त जीवन है। चाहने और मूड होने पर भी दिन में लिखने के लिये समय नहीं मिल पाता। इसी कारण इस संग्रह की अधिकांश रचनायें रात्रि के प्रथम और द्वितीय प्रहरों में लिखी गई हैं। प्रेरणा के बिना मैं कभी लिखता नहीं और अब शायद मेरी प्रेरणा को भी आधी रात के समय जागने की आदत हो गई है। मेरी कविता क्या है? कैसी है? इसका विवेचन मैं स्वयं न कर सुहृदपाठकों और विद्वानों पर ही छोड़ता हूँ। हर व्यक्ति की अपनी मान्यतायें हैं, अपनी पसन्द है। किसी को कोई चीज़ जँचती है तो दूसरा उस चीज को कण्डम कर देता है। 'अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग' वाली इस दुनिया में किसकी सुनी की जाये और किसकी बात मानी जाये। अच्छा यही जँचा कि सुनी सबकी जाये पर करी मन की जाये। इसका अभिप्राय यह नहीं कि मन निरंकुश हो जाये। मन की निरंकुशता और कला की साधना में कभी सामंजस्य स्थापित नहीं हो सकता। फिर मैं तो साधना के पंथ का पंथी हूँ।

'गीली आँखें गीले गीत' आपके हाथों में है। इस नामकरण के पीछे भी कुछ रहस्य है। जिस पर थोड़ा सा प्रकाश डालना जरूरी है। अपनी ममतामयी अम्माँ की इच्छानुसार होली का त्यौहार मनाने बम्बई से घर आया हूँ, बाहर गली में फाग खेला जा रहा है और मैं बोझिल मन क्लांत तन लिए बीते दिनों के पन्ने उलट रहा हूँ। ये पन्ने पंद्रह वर्ष पुराने हैं। आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व सन् १९४१ में मेरे पिताजी की हत्या धन कुबेरों के खूनी पंजों द्वारा कर दी गई। चार वर्ष पूर्व तक सभी इस हत्या को पिताजी की आत्महत्या ही मानते रहे, पर तीन साल पहले अचानक एक दिन मेरी आँखों के सामने इस हत्या का रहस्य बिजली की चकाचौंध की तरह चमक उठा। स्वर्गीय पिताजी से मुझे विशेषानुराग था। ना समझ होने पर भी उनकी मृत्यु ने मेरे बाल्य हृदय पर शोक की अमिट रेखा अंकित कर दी। और जब मुझे उनकी असाधारण मृत्यु के पीछे एक सुदृढ षडयन्त्र की रूपरेखा का पता लगा तब.........तब मैं केवल मन मसोस कर रह गया। जवानी के जोश ने एक बार खून को ललकारा भी। पर मानवता के साथी धीरज ने मेरा दामन पकड़ लिया। बुद्धि ने हृदय को थपथपा दिया और उस थपथपी के बाद हृदय रो पड़ा। आँखें गीली हो गईं, गीत गीले हो गये।

पूँजीवाद के इस युग में सोने और चाँदी की झंकार सुनी जाती है। बचपन में भले ही मेरे कान भी इन झंकारों से संगीत का आनन्द

उठाते रहे। पर होश संभालते ही मुझे बचपन के उस आनन्द की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। अपने पिता जी के रक्त का अर्घ्य चढ़ाना पड़ा। सुना था खून सर पर चढ़कर बोलता है, पर देखता कुछ और ही हूँ। खूनी समाज के सिर पर चढ़ता है, उसी तरह जैसे पुष्प देवता के! ....फिर भी 'प्रत्यूष' के इस झुटपुटे के बाद उषा का आलोक दिखाई दे रहा है। यद्यपि आँखें अब भी गीली हैं, गीत अब भी गीले हैं। पर शायद कल.........कल की क्या कहूँ............

उदयदेवता, चन्दौसी
होली, ५मार्च १६५८

शिवशंकर वशिष्ठ

तालिका

वीणावादिनी से !

सौन्दर्य, सौरभ, सार दे !
मधु प्यार दे ! हे शारदे !
कवि के अगोचर रूप को,
युग का नया आकार दे !

जन पिस रहे अज्ञान में;
अनुमान में, अवसान में,
दुर्दैव के कटु भान में,
दुर्गन्धियुत परिधान में,
सुख तोप अचला भक्ति, भव—
के मध्य आज उतार दे ।

सौन्दर्य, सौरभ, सार दे ।
मधु प्यार दे ! हे शारदे !
कवि के अगोचर रूप को,
युग का नया आकार दे !

गति कल्पना गति हीन है,
मन भावना भी दीन है;
रचना कुरुचि में लीन है,
निर्माण प्राण विहीन है;
झंकार वीणा की सुना,
मन को नई हुंकार दे !

सौन्दर्य, सौरभ, सार दे ।
मधु प्यार दे ! हे शारदे !
कवि के अगोचर रूप को,
युग का नया आकार दे !

शिव, सत्य, सुन्दरता अमर,
उत्थान के स्वर साथ भर;
आयें धरा पर फिर उतर,
घर-घर बहे रस की लहर,
मन्तव्य मनसिजा खिला, भू—
पर स्वर्ग को भी वार दे ।

सौन्दर्य, सौरभ सार दे ।
मधु प्यार दे ! हे शारदे !
कवि के अगोचर रूप को,
युग का नया आकार दे ।

★

छवि का अंजन

तेरी छवि का भरकर अंजन नयन लुटाते अपना धन !
लेने औ' देने से ऊपर पहुँच चुका है अपनापन !

चेतन और अचेतन मिलकर,
पिछली भूल सुधार रहे;
साँसों के नाविक जीवन की,
नैया को कर पार रहे;

केशों ने रजनी के तम को,
धोकर पावन कर डाला,
तेरे इक इंगित पर रीते,
अम्बर का घट भर डाला;

तेरी मुरली धड़कन बनकर,
मुझे जगाती जाती है;
पल्लव हिलते हैं अर्चन के,
भाव कर रहे आराधन।

तेरी छवि का भरकर अंजन नयन लुटाते अपना धन !
लेने औ' देने से ऊपर पहुँच चुका है अपनापन !

धीरे-धीरे भीड़ जमा हो—
ती जाती है द्वारे पर;
पलकों के चिक उठा न पाये,
जोर शोर सब हारे कर;

बैठ गया हूँ रथ पर अब तो,
चिन्ता नहीं, न कुछ डर है;
तेरा ध्यान बनी है मंजिल,
गति तेरी मेरा घर है;

आलिंगन है आत्म-तत्व का,
देह शिथिल होती जाती;
तू मुझ में है मैं तुझमें हूँ,
बरस रहा रसमय सावन!

तेरी छवि का भरकर अंजन नयन लुटाते अपना धन!
लेने औ, देने से ऊपर पहुँच चुका है अपनापन!

★

आदमी का गीत

पत्थरों के सख्त सीने को तराश
बह चला यह आदमी का गीत है।
हार कर जो हारती खुद को नहीं,
उस जवानी की हमेशा जीत है।

जब सितारों ने गगन आबाद कर,
कहा चुपके से मनुज के कान में—
'आज से राजा हमीं सुरलोक के
तुम सदा झुकते रहो सम्मान में।'

तब हँसा मानव, अतल को चीरती
वह हँसी गूँजी कहीं पाताल में,
आदमी के मैल का जो दाग़ था
चाँद बन चमका गगन के भाल में;

और तब इन्सान ने बस यह कहा
'ऐ सितारो ! गर्व करना भूल है,
तुम जिसे आकाश कहते हो सुनो !
शून्य है वह इस धरा की धूल है;

धूल जमकर बन गई आकाश है;
मिल गई तुमको कि जिससे राह है,
किन्तु इतराना न इस पर भूलकर
जल रही इसमें मनुज की दाह है;

इस जलन के संग अचला चल रही,
इस जलन से पल रहा आकाश है,
यह जलन गति है, मनुज की शक्ति है,
यह न हो तो सृष्टि मुर्दा लाश है;

चल रहा है विश्व रुकना है मना
गति मनुज की है, मनुज गतिवान है,
ठोकरों से पाँव की मंजिल कुचल
सतत बढ़ना आदमी की रीत है।'

पत्थरों के सख्त सीने को तराश,
वह चला यह आदमी का गीत है।
हारकर जो हारती खुद को नहीं,
उस जवानी की हमेशा जीत है।

चल पड़ा इन्सान सीना तान जब
भागकर भगवान पत्थर में छिपा,
और बुत बनते गये सब देवता
शंख घंटों से मरण का घर लिया,

आरती की ज्योति थी या ज्वाल थी,
मौन हो पाषाण बरबस झुक गया।
और झुकते को झुकाना पाप है,
सोचकर यह तब मनुज भी रुक गया।

किन्तु पत्थर के हृदय की कालिमा
साफ हो पाई नहीं, फिर छल किया,
मन्दिरों के सीखचों से झाँककर
भक्ति को षड्यन्त्र का कटु फल दिया;

और प्रलयंकर बना इन्सान तब,
छल नहीं, यह तो हमारी हार है,
जड़करे उपहास मानव-शक्ति का,
पत्थरों से फूट निकली धार है;

क्रुद्ध नयनों से लखा आकाश तब
रो पड़ा चन्दा सितारों के सहित,
'ये हठीले हैं व्यथा के दाग हैं,
इन सितारों का न तुम करना अहित,'

आ गई इन्सान को तब भी दया,
पत्थरों को रूप दे चमका दिया,
चाँदनी के प्यार से तारे भरे,
पत्थरों को प्राण देती प्रीत है।

पत्थरों के सख्त सीने को तराश,
वह चला यह आदमी का गीत है।
हारकर जो हारती खुद को नहीं,
उस जवानी की हमेशा जीत है।

नये यौवन की उमंगों से भरा
यह अमर मानव युगों को चूमता,
ठोकरें खाकर गिरा औ' फिर उठ
मस्तियों के साथ मस्तक झूमता;

यह झुका अभिमान से हरगिज़ नहीं,
झुक गया लेकिन विनय से प्यार से,
डूब जाता है नयन की बूंद में
किन्तु उभरा है गहन जलधार से;

जिन्दगी से नेह है इसका अमिट
जिन्दगी लाता नियति को फोड़कर,
मौत भी आती अगर दिल खोलकर
यह गले लेता लगा सब छोड़कर;

है यही इन्सान जिसकी भक्ति ने
जड़ प्रकृति को भी दिया सम्मान है,
रीझकर पाषाण के सौन्दर्य पर
कह दिया क्या कान्तिमय भगवान् है,

है मनुज मासूम भोला है बहुत
क्योंकि सच्चाई सदा नादान है;
दुश्मनों को जीतकर भी हारता,
इसलिये तो सदा गौरववान है;

कल्पना को खींचकर अज्ञात से
कर रहा निर्माण जीवन-नीड़ का,
खुद बनाता है मिटाता है स्वयं,
बस इसी क्रम का अमर संगीत है।

पत्थरों के सख्त सीने को तराश,
वह चला यह आदमी का गीत है,
हारकर जो हारती खुद को नहीं,
उस जवानी की हमेशा जीत है।

मिट्टी

क्यों कहते हो इसको मिट्टी यह शक्ति अनादि पुरानी है।
इस मिट्टी में दुनिया को अपनी इज्जत अभी छिपानी है॥

इस मिट्टी का परिचय यदि कुछ पाना है तो मिट्टी हो लो,
ऊपर का कालापन धोकर अन्दर की आँखों को खोलो;

यह मिट्टी नहीं देवता की यह तो मानव की थाती है।
जग बना अनेकों बार मिटा यह ज्यों की त्यों मुसकाती है;

परिवर्तन की भीषण लहरें आयीं औ' कितनी चली गयीं,
चट्टानों को छलनी करके मिट्टी के हाथों छली गयीं;

इस मिट्टी का इक अंश शक्ति का दूत महा मानव जिस दिन—
था खड़ा हुआ, बज उठी मौनता में भी शहनाई उस दिन;

वह मानव जिसने सागर की उत्ताल तरंगों को बाँधा,
तम की छाती को फाड़ तेज को जगा धरित्री को साधा,

वह मानव जिसकी रचना से विधि की रचना भी गई लजा,
जिसकी निर्माण चातुरी से झुक गई प्रार्थना तुल्य कजा;

वह मनुज प्रलय को जीता था जिसने कर के पतवारों पर,
नभ को तारों से बींध दिया मिट्टी के मौन इशारों पर;

जिसने जड़ में जीवन लाकर जीवनदाता को झुका दिया,
वह मिट्टी का मानव मिट्टी के सत की अमर निशानी है।

क्यों कहते हो इसको मिट्टी यह शक्ति अनादि पुरानी है,
इस मिट्टी में दुनिया को अपनी इज्जत अभी छिपानी है।

इस मिट्टी का अस्तित्व सत्य शिव सुन्दर और अनश्वर है,
इसके रजकण में है विराट, इसकी लय का शाश्वत स्वर है;

इसके प्रभाव से कला फली फूली, विकसा जगजीवन क्रम;
चट्टानों के सीने तराश कलकल करता वह निकला श्रम;

वह श्रम जिसकी उज्ज्वल गाथा अब भी पत्थर के बुत गाते,
खामोश अजन्ता के खण्डहर सोते-सोते ही उठ जाते;

नालन्दा तक्षशिला की इन प्राचीरों से पूछो जाकर,
कह देंगे वे मिट्टी न मिटी युग मिटे अनेकों आ जाकर;

जग के उर का उल्लास और संसृति का यह वरदान मधुर,
यह मौन मृत्तिका जीवन की बन गई अमर्त्य लहर का स्वर,

यह स्वर जिस दिन रुक जायेगा हो जायेगा अम्बर पानी,
ग्रह, रवि, चन्दा, तारे सीमा को लाँघ करेंगे मनमानी;

उस दिन मोती-सी आब तुम्हारी कहाँ रहेगी बोलो तो!
उन महानाश की घड़ियों से पहले ही आँखें खोलो तो!

यह कल थी और रहेगी कल यह सत्य सनातन नूतन है,
दुनिया बूढ़ी हो गई मगर मिट्टी में नई जवानी है।

क्यों कहते हो इसको मिट्टी यह शक्ति अनादि पुरानी है,
इस मिट्टी में दुनिया को अपनी इज्जत अभी छिपानी है।

ताजमहल से !

ओ ताजमहल ! तू जिस युग का राजा था वह युग बीत गया।
अब छोड़ पुराने राग बदलता जहाँ गा रहा गीत नया।

माना तेरी हर पटिया है बेजोड़ कला का रूप लिये,
माना तेरी इस जन्नत में सुन्दरता अभिनव रूप लिये;

माना तेरी काया छूने चाँदनी गगन से आती है,
रजनी किरणों के आँचल से तारों के फूल चढ़ाती है,

चरणों में यमुना की लहरें अपना आवास बनाये हैं,
कवियों की अगणित उपमायें तेरा शृंगार सजाये हैं;

सचमुच धरती पर अचरज है तू एक अनोखा ताज महल !
पर कभी हृदय को भी टटोल देखा है तूनें ताजमहल !

बेदाग बदन पर इतराने वाले तेरा दिल काला है,
इसलिये आज के नवयुग में तेरा सुन्दर कल बीत गया,

ओ ताजमहल ! तू जिस युग का राजा था वह युग बीत गया।
अब छोड़ पुराने राग बदलता जहाँ गा रहा गीत नया।

जिस कला और सुन्दरता पर तुझको अभिमान बड़ा भारी,
वह लूटी थी तूने इक दिन ओ ताजमहल ! अत्याचारी,

इतिहास गवाही कब देगा वह तो तेरे गुण गाता है,
सच्चाई को फाँसी देकर तेरा यश लिखता आता है;

तेरे गुनाह की तसवीरें अब आज हाथ में आई हैं;
किसके यह कटे हाथ हैं रे ! किसकी सुकुमार कलाई है ?

यह कर तेरे निर्माता हैं, यह हाथ कला के दाता हैं,
जिन हाथों को काटा तूने वह तेरे भाग्य विधाता हैं;

उपकार कला पर खूब किया, प्रतिकार कला को खूब दिया,
उस पर भी तूने यह सोचा, मैं ताजमहल, मैं जीत गया।

ओ ताजमहल ! तू जिस युग का राजा था वह युग बीत गया।
अब छोड़ पुराने राग बदलता जहाँ गा रहा गीत नया।

केवल इतना ही नहीं और भी शेष बहुत तेरा परिचय,
मुमताज महल के स्मारक प्यारे ताजमहल तेरी जय जय !

मुमताज महल क्या बात ? मुहब्बत की मलिका तेरी रानी,
वह रानी जिसके कारण ली तूने जन-जन की कुरबानी;

इक मुर्दा कब्र सजाने को कितनों की कबरें खोदी थीं;
इक मुख को जरा हँसाने को कितनी जवानियाँ रो दी थीं;

कितने श्रमकार मरे होंगे, कितने मजदूर खपे होंगे;
जब इस मजार पर लगे संगमरमर से शीश नपे होंगे;

ताजी मेंहदी से रचे हाथ तब लाल खून से गीले हो—
चूड़ियाँ तोड़ कहते होंगे, छिन बिछुवों का संगीत गया।

ओ ताजमहल ! तू जिस युग का राजा था वह युग बीत गया।
अब छोड़ पुराने राग बदलता जहाँ गा रहा गीत नया।

मुमताज महल को कहाँ पता वह तो बेचारी मुर्दा है,
उसके मजार का श्वेत रंग गहरे धोखे का पर्दा है,

कितने बेबस इन्सानों की लाशों पर तू है खड़ा हुआ,
तुझमें सुन्दरता कहाँ पत्थरों से पत्थर है जुड़ा हुआ,

तूने ताकत से धन से इक दिन कला कैद कर ली जरूर,
इससे न कला का बिगड़ा कुछ भी चूर हुआ तेरा गरूर;

श्रमकार कलाकारों पर जितने जुल्म किये तूने बुज़दिल !
वे अमर हुये, आसान हुई उनकी आखिर सारी मुश्किल;

वे जान गये हैं आज ताज का राज़ कला की कीमत को;
इन कलाकार मजदूरों की छैनी का हर इक गीत नया।

ओ ताजमहल ! तू जिस युग का राजा था वह युग बीत गया।
अब छोड़ पुराने राग बदलता जहाँ गा रहा गीत नया।

नये साल का पृष्ठ

एक साल कम हुआ और इस जीवन का,
नये साल का पृष्ठ खोलने वाले सुन!
छोटी-सी है जान बवाल सैकड़ों हैं,
छुटकारे का आँख खोलकर रस्ता चुन!

कितनी ही अंजान समस्याओं में तू!
उलझा है इस तरह सितारों से नभ ज्यों,
अपने आप खाइयाँ निर्मित कर तो दीं
किन्तु पार करने में आशंकित अब क्यों?

बुद्धि मिली थी तुझे ज्ञान के परिचय को,
हृदय मिला था प्रीति रीति अपनाने को,
गीत मिला था तुझे जिन्दगी का पगले!
साँसों के पावन सितार पर गाने को।

तूने गाया गीत न स्वर झंकार हुई
तारों की खूँटी में ऐंठन पड़ी रही,
मदहोशी में तुझे न इतना ध्यान रहा
नश्वर स्वर में कहाँ अहम् की कड़ी रही।

लापरवाही से नासमझी पनप रही
चेतावनी समय अब तुझको देता है,
जिस कर से कसता है ढीले तारों को
कहीं उसी से पड़े न पछताना सिर धुन!

एक साल कम हुआ और इस जीवन का,
नये साल का पृष्ठ खोलनेवाले सुन !
छोटी-सी है जान बवाल सैंकड़ों हैं
छुटकारे का आँख खोलकर रस्ता चुन !

मन मस्तिष्क मिलाकर अपना देख जरा,
शेष रहेगी नहीं कहीं भी तो उलझन,
वर्षों से जो गाँठ पड़ी है दोनों में
हो जायेगी दूर समय की बन सुलझन,

फिर जो धूम उठेगी तेरी साँसों से
आलोकित उससे हो जायेगा त्रिभुवन,
तार-तार में मधु की धार बहेगी जो
पुलकित हो जायेंगे उससे शुभ जन-मन,

नश्वर स्वर का राग अनश्वर बन करके
तेरी अचला का शृंगार सजायेगा,
जीवन का हर वाद्य स्वयं प्रस्तुत होकर
यौवन का संगीत सुनाने आयेगा,

पृष्ठ-पृष्ठ पर तब तेरी शुभगाथा को
पृष्ठों का आकार बढ़ाना ही होगा,
एक साल का नहीं अनन्त युगों का क्रम
मानव तेरे गीतों को गायेगा धुन !

एक साल कम हुआ और इस जीवन का,
नये साल का पृष्ठ खोलने वाले सुन !
छोटी-सी है जान बवाल सैंकड़ों हैं
छुटकारे का आँख खोलकर रस्ता चुन !

मन का गंगा-जल

चंचल चित को आज अचंचल मन का गंगा-जल दो।
लहरों को जो मल, जल पाये ऐसा दीपक ढल दो।

निर्विकार रह सके विकारों में भी अविनाशी तन,
भोगों का अधिकार योग से भोगे जनमन पावन;
जो निर्गन्ध रहे खुद लेकिन झूम लुटा दे सौरभ,
जिसे देखने को अगणित खण्डों में बँट जाये नभ;
इस मलीन अचला के सर को इक ऐसा शतदल दो !

चंचल चित को आज अचंचल मन का गंगा-जल दो।
लहरों को जो मल, जल पाये ऐसा दीपक ढल दो !

जो अनन्त के महाशून्य को शून्य नहीं रहने दे,
होनहार के हाथ विवश हो जो न सुयश बहने दे;
जिसके अधरों की मधुरिम स्मित देख भाग जाये दुख,
ठुकराने पर भी पैरों पै जिसके पड़ा रहे सुख;
मनु के इस शाश्वत स्वरूप को मनुजोचित सम्बल दो।

चंचल चित को आज अचंचल मन का गंगा-जल दो।
लहरों को जो मल, जल पाये ऐसा दीपक ढल दो।

★

तारों मुख से कुछ मत कहना ?

तारों मुख से कुछ मत कहना !

अम्बर को स्मित देना, चाहे खुद घुट घुट के रहना ।
इस अनन्त में अन्तहीन छवि भरकर चुप चुप दहना !

तारों मुख से कुछ मत कहना !

प्राणों का कोलाहल वाणी आँक नहीं पाती है,
वाणी के मुखरित होते ही साख चली जाती है;
कह देने से व्यथा हृदय की कम तो हो जाती है,
किन्तु व्यथा की कमी प्रीत को रीता कर जाती है;

गौरववान न हल्के होना, झिलमिल हँसते सहना !

तारों मुख से कुछ मत कहना !

अम्बर को स्मित देना, चाहे खुद घुट घुट के रहना !
इस अनन्त में अन्तहीन छवि भरकर चुप चुप दहना !

तारों मुख से कुछ मत कहना !

नभ का रंग बदलना उसके मन का कालापन है,
इक रसता में पली भक्ति ही सच्चा आराधन है;
तुम जलकर भी अमिट तुम्हारा त्याग हृदय का धन है,
दीप्ति नहीं, यह तो नयनों में पीड़ा का अंजन है,

तम में रहकर भी तम हरना पंथ ज्योति का गहना !

तारों मुख से कुछ मत कहना !

अम्बर को स्मित देना चाहे खुद घुट घुट के रहना !
इस अनन्त में अन्तहीन छवि भरकर चुप चुप दहना !

तारों मुख से कुछ मत कहना !

मन चाहा मीत नहीं मिलता

अनचाहे राही मिलते हैं मन चाहा मीत नहीं मिलता ।
बजते संशय के तार बहुत फिर भी विश्वास नहीं हिलता ॥

चरणों में गति है प्रगति नहीं लेकिन चलने का क्रम जारी,
मानो मंज़िल के ठगने को बन गये चरण हैं व्यापारी;

कानों की हर इक आहट पर आँखों के परदे उठते हैं,
पाथेय प्यार का पाकर भी कब दाग़ व्यथा के छुटते हैं;

कच्ची मिट्टी की बनी हुई पगडण्डी पर कच्चे साथी,
मिलकर छुटते हैं उसी तरह जैसे पतनाले बरसाती;

कैसे आधार मान लूँ मैं जब मन को लहर नहीं मिलती,
लहरों को चूम लीन कर ले वैसा तो कूल नहीं मिलता ।

अनचाहे राही मिलते हैं मन चाहा मीत नहीं मिलता ।
बजते संशय के तार बहुत फिर भी विश्वास नहीं हिलता ॥

मन को जिसकी है चाह घनी क्या वह केवल सपना ही है ?
जीने की अभिलाषाओं को जीवन भर क्या तपना ही है ?

आँखों का खारा पानी भी सागर बन जाया करता है,
दो बूँद स्नेह का दीपक भी गृह अन्धकार को हरता है;

मेरे नयनों ने मुझे छला बन गया स्नेह भी पाप मुझे,
मैं जिसे ढूँढता हूँ प्रति पल बन गया वही अभिशाप मुझे;

कितनी यह गूढ़ पहेली है छलना जीवन को छलती है,
प्राणों को तन्मय करदे जो वह परिचय मुझे नहीं मिलता ।

अनचाहे राही मिलते हैं मन चाहा मीत नहीं मिलता ।
बजते संशय के तार बहुत फिर भी विश्वास नहीं हिलता ॥

चिलमन

मिलने को आतुर प्राण किन्तु कोई प्राणों को रोक रहा।
अन्तर का लघु वातायन भी बढ़ते चरणों को टोक रहा॥

वह झाँक रहे हैं चिलमन से मैं धरती पर खामोश खड़ा,
अनगिनती पहरेदारों से घिरता जाता आकाश बड़ा;

मैं उलझन में हूँ कैसे अब पहुंचूँगा प्रियतम द्वार तलक,
इतने प्रहरी से बच जायें ये सोच रहीं मनुहार पलक;

जग के अभिमानी वातचक्र पैरों में बन्धन डाल रहे,
सांसों को आशंकाओं के गलते जीवन कण पाल रहे;

विद्रोही भावों की संसृति करती जाती संघर्ष घना,
क्या प्यार किया अपराध किया जो निंदा करता लोक रहा ?

मिलने को आतुर प्राण किन्तु कोई प्राणों को रोक रहा।
अन्तर का लघु वातायन भी बढ़ते चरणों को टोक रहा॥

बोलो प्रियतम तुम ही बोलो कैसे सीमा को दूर करूँ ?
तुम झाँक रहे जिस चिलमन से मैं कैसे उसको चूर करूँ ?

यह सच है शक्ति बहुत लेकिन यह शक्ति प्यार में कहाँ चली ?
लज्जा की लाली से कोमल शुचि प्रीत भक्ति में सदा पली;

तुम मुझ में हो मैं तुम में हूं यह चिलमन केवल धोखा है,
मंज़िल जब ध्येय नहीं है तब खुद को क्यों खुद में रोका है ?

उपहास सभी करते रहते विश्वास न छलता है लेकिन—
मिटकर कब मिटे पतंगे हैं जग को अब भी यह शोक रहा।

मिलने को आतुर प्राण किन्तु कोई प्राणों को रोक रहा।
अन्तर का लघु वातायन भी बढ़ते चरणों को टोक रहा॥

प्राणों की कसकन

प्राणों की कसकन जीवन का बनती जाती दंशन।
कैसे व्यथा छिपेगी बोलो जीवन के आराधन ?

चेतन मन की भाव लहरियाँ जाल बिछाती रहतीं,
हे निर्बन्ध तुम्हें पाने को कितनी चोटें सहतीं;

धीरे-धीरे प्राण यवनिका ऊपर उठती जाती,
दृग के तारक की छवि प्रियतम खुद ही छुटती जाती;

बड़े यत्न से जिन्हें सँभाला वे सांसें बिखरी हैं,
अलकों की परियाँ कम्पन की सिहरन पर निखरी हैं;

क्या अब भी कुछ शेष रह गया है बँधने को बन्धन,
क्या अब भी सूनी पीड़ा का दोगे बस सूनापन ?

प्राणों की कसकन जीवन का बनती जाती दंशन।
कैसे व्यथा छिपेगी बोलो जीवन के आराधन ?

तुम में लय होकर भी उन्मन प्राण विकल रहते हैं,
बुझती हुई चाह के शीतल अंगारे दहते हैं,

पल-पल बीत रहे हैं पल की अवधि बड़ी विस्तृत है,
आशा की जर्जर काया पर माया का आवृत है;

इच्छा के पनघट पर सत् का घट फिर फूट न जाये,
प्राण मिलन का मोह नेह के कर से छूट न जाये;

तार तार कर मन ने अपने तन का किया समर्पण;
मिटने वाले स्वर साधन से कैसे होगा अर्चन ?

प्राणों की कसकन जीवन का बनती जाती दंशन।
कैसे व्यथा छिपेगी बोलो जीवन के आराधन ?

जल रही है आरती

साधना आराधना की जल रही है आरती।
प्राण! जीवन कामना तुम पर स्वयं को वारती!

धूम्र के प्यासे अधर नभ के चरण को चूमते,
प्यार के सुकुमार पल प्रिय जा रहे हैं झूमते;

मौन इंगित पर तुम्हारे प्राण वीणा बज रही,
साँस की दुल्हन सुहागन बन अभी तक सज रही;

रूप की रति रथ लिये है आज द्वारे पर खड़ी,
हँस रही अभिसारिका है टूटती जाती कड़ी;

दीपकों की बातियों का स्नेहमय स्वर कह रहा,
रे पुजारी आज पूजा आ रही है तारती!

साधना आराधना की जल रही है आरती।
प्राण! जीवन कामना तुम पर स्वयं को वारती!

कोष नयनों ने भी अपना आज रीता कर दिया,
आरती का थाल अगणित मोतियों से भर दिया;

भावना के फूल तारों से बिखरते जा रहे,
प्राण! तुम में व्याप्त होने प्राण अब अकुला रहे;

मृत्यु ने मेरे लिये निज को लुटाया आज फिर,
देवि! इसके त्याग से मैं झुक गया हूँ आज फिर;

आवरण यह बीच का अब और छल सकता नहीं,
ज्योति विस्मृति की लिये सुधि आ रही पुचकारती।

साधना आराधना की जल रही है आरती।
प्राण! जीवन कामना तुम पर स्वयं को वारती!

ज़िन्दगी की नादानी

मत समझाओ आज ज़िन्दगी की सुन्दर नादानी को।
जल जाने दो अंगारों को बह जाने दो पानी को।।

मदिरालय के दीपक में कुछ-कुछ बेहोशी बाक़ी है,
पीने वालों की बिसात क्या प्यासी खुद ही साक़ी है,

पीने के मतवाले प्राणों को मत रोको जाने दो,
असफलता के प्याले में अरमानों को घुल जाने दो,

पाप-पुण्य के पचड़े में बेकार उलझ कर क्या लोगे ?
मृत्यु माँगती तुमसे तुमको बोलो उसको क्या दोगे ?

घायल हिरनी से इस मन को पायल में मिल जाने दो,
उड़ने दो चरणों की गति पर चकनाचूर जवानी को।

मत समझाओ आज ज़िन्दगी की सुन्दर नादानी को।
जल जाने दो अंगारों को बह जाने दो पानी को।।

बहुत दिनों से रोका तुमने अब मत रोको अपने को,
एक घूँट में मुसकाने दो महा मृत्यु के सपने को;

जीवन की वीणा बजती है साँसों के दो तारों पर,
आज मिटा दो अपनी हस्ती इस स्वर की झंकारों पर;

पीने वालों ने प्याले में क्या है यह कब देखा है,
यहीं हार कर लज्जित होता क्रूर नियति का लेखा है;
पिया नहीं है तुमने लेकिन पिया पिये से मिलता है,
पी लो पिया पिये की रखता अपने पास निशानी को।

मत समझाओ आज ज़िन्दगी की सुन्दर नादानी को।
जल जाने दो अंगारों को बह जाने दो पानी को।।

रीते नयन

मन को कुछ आधार मिला है किन्तु नयन रीते के रीते।
इस उलझन में अभिलाषामय कितने जीवन यौवन बीते॥

रजनी ने अपने आँचल में दिनकर के अंगार भरे जब;
हिमकर ने सागर से उठकर नभ के सब सन्ताप हरे जब;

मलयानिल ने नन्दन के सौरभ को था जिस दिन फैलाया,
धरती की सूखी ठठरी ने जिस दिन रूप नया था पाया;

उस दिन से मेरा चातक मन खोज रहा है तुमको पावन,
कितने दिन अब और लगेंगे इस प्रकार मुख सीते-सीते।

मन को कुछ आधार मिला है किन्तु नयन रीते के रीते।
इस उलझन में अभिलाषामय कितने जीवन यौवन बीते॥

पूछ रही है बुद्धि तर्कमय प्रश्न अनेकों उलझे-उलझे,
क्या उत्तर दूँ उत्तर भी तो प्राण तुम्हीं में आकर उलझे;

काया का अवगुण्ठन छाया की चितवन से टकराया है,
निःश्वासों के धूम्र-पुंज ने माया का पट फैलाया है;

हे सुकुमार सलोने प्रियतम पीड़ा का पर्दा अब खोलो !
अन्त नहीं है इस मदिरा का हार गया मैं पीते-पीते।

मन को कुछ आधार मिला है किन्तु नयन रीते के रीते।
इस उलझन में अभिलाषामय कितने जीवन यौवन बीते॥

पल पल झड़ते जाते पात

पल पल झड़ते जाते पात !
किसको दूँ औ किससे लूँ इन प्राणों की सौगात।
रह जाती है मन में मन के अरमानों की बात॥
पल पल झड़ते जाते पात !

अधरों की मुसकान छिप गई अधरों की ही ओट,
पीड़ा से टकराकर दुख को गहरी आई चोट;
जिस पर जिसका जोर उसी से मिलती उसको हार,
जल में पल कर भी जल से ही जल जाता जलजात।
पल पल झड़ते जाते पात !

किसको दूँ औ किससे लूँ इन प्राणों की सौगात।
रह जाती है मन में मन के अरमानों की बात॥
पल पल झड़ते जाते पात !

दिया स्नेह देता बाती को बाती करती क्षार,
यौवन की कोमलता ही बन जाती उसका भार;
साँसों से मिलकर भी सांसें जीवन से हैं दूर,
सात स्वरों की सरगम ही में स्वर लहरी की मात।
पल पल झड़ते जाते पात !

किसको दूँ औ किससे लूँ इन प्राणों की सौगात।
रह जाती है मन में मन के अरमानों की बात॥
पल पल झड़ते जाते पात !

नयनों की डोरी में बँधकर भी बन्धन अंजान,
परिचय पाकर भी अन्तर को तन न सका पहचान;
झिलमिल झिलमिल तारों वाली रूप चुनरिया ओढ़,
रात रिझाने चली चाँद को, चाँद गलाता गात!

पल पल झड़ते जाते पात !

किसको दूँ औ किससे लूँ इन प्राणों की सौगात।
रह जाती है मन में मन के अरमानों की बात॥

पल पल झड़ते जाते पात !

प्रणय की वर्षगाँठ

हम तुम मिले प्रणय के प्राणी ।
पंचम वर्षगाँठ है रानी !

छप्पन गया लगा सत्तावन,
किन्तु अभी तक मन है उन्मन;
पग पग पे ठोकर लगती हैं,
आशायें मन को ठगती हैं;
युग का पृष्ठ प्रश्न करता है,
मौन हुई क्यों कवि की वाणी ?

हम तुम मिले प्रणय के प्राणी ।
पंचम वर्षगाँठ है रानी !

ऊषा के माथे की लाली,
पोंछ रही है रजनी काली;
यहाँ सुहाग करों की कड़ियाँ,
प्यार बना जलकर फुलझड़ियाँ;
हर प्रयास के अवगुण्ठन में,
नियति किया करती मनमानी ।

हम तुम मिले प्रणय के प्राणी ।
पंचम वर्षगाँठ है रानी !

पंछी उड़ता नभ के ऊपर,
लक्ष्यहीन सा गिरता भू पर;
यह उत्थान पतन छलता है,
जीवन क्या अग जग जलता है;

इससे परे कामना जिसकी,
प्राण कहाँ वह राह अजानी ?

हम तुम मिले प्रणय के प्राणी !
पंचम वर्षगाँठ है रानी !

जहाँ पिघलता सन संवत्-क्रम,
सुख दुख का मिट जाता है भ्रम;
प्यार हमारा जिसकी थाती,
प्राण ! देह यह उसकी बाती;
इसी किरण के हेतु जलेंगे,
असफलता की लिये निशानी।

हम तुम मिले प्रणय के प्राणी।
पंचम वर्षगाँठ है रानी !

वहीं परिधि निस्सीम बनेगी,
लम्बी चादर खूब तनेगी;
संसा मिट जायेगी मन की,
संख्या छुट जायेगी तन की;
वर्ष न होंगे, घड़ी न होंगी,
होगी प्यार भरी नादानी।

हम तुम मिले प्रणय के प्राणी।
पंचम वर्षगाँठ है रानी !

★

मृत्यु

अरी कौन तुम जो घट पट को खोल रही हो?
निःश्वासों के धूम्र - पुंज को तोल रही हो!

महाशून्य की वर्ग पहेली सी तुम उलझी,
बढ़ी आ रहीं, नहीं चरण की गति है सुलझी;
तमसी काली किन्तु तेज का दीप करों में,
शिवशंकर के कालकूट सी स्मित अधरों में;
ज्वालामुखि सम नेत्र लाल अंगार उगलते,
महानाश के बीज जीभ से चले पिघलते;
अनहद सा यह नाद कान फटते जाते हैं,
मेरे पाले भरम स्वयम् हटते जाते हैं;
मौन मूक होकर भी क्या तुम बोल रही हो?

अरी कौन तुम जो घट पट को खोल रही हो?
निःश्वासों के धूम्र - पुंज को तोल रही हो!

रोमांचित है देह रक्त संचार रुका है,
देवि! चरण पर आज तुम्हारे जीव झुका है;
कौतूहल के साथ तुम्हारा परिचय पाने,
जन्म जन्म की साध चली सर्वस्व लुटाने;
कुछ कुछ आती याद मिली हो तुम पहले भी,
इसी रूप में तुम्हें देख आया पहले भी;
हाँ हाँ आई याद पन्थ जब भी मैं भूला,
गाँठ वर्ष की खोल झुलाया तुमने झूला;
चिर परिचित वह राग आज फिर घोल रही हो।

अरी कौन तुम जो घट पट को खोलरही हो ?
निःश्वासों के धूम्र - पुंज को तोल रही हो !

सचमुच तुमने मुझे हमेशा ही समझाया,
किन्तु तुम्हारी बात कभी मैं समझ न पाया;

मिट्टी का संसार अन्त में मिट्टी होता,
मिट्टी का इन्सान तानकर चादर सोता;
इसीलिये तुम उसे जगाने आती रहतीं,
नूतनता के लिये पुरातन चोटें सहतीं;
अपने मुख को आज सभी से मोड़ रहा हूँ,
तुम से मिलने हेतु पींजरा छोड़ रहा हूँ;

महा मिलन की घड़ी अरी क्यों डोल रही हो ?
अरी कौन तुम जो घट पट को खोल रही हो ?
निःश्वासों के धूम्र - पुंज को तोल रही हो !

❋

रे मन ! कुछ तो कहते !

रे मन ! कुछ तो कहते !
बिना कहे ही टूट गये तुम क्या क्या सहते सहते !
रे मन ! कुछ तो कहते !

रो न सके मुसकाये भी कब,
बीत गये ऐसे ही दिन सब;
सच तो क्या होने थे सपने लेकिन अपने रहते।
रे मन ! कुछ तो कहते !
बिना कहे ही टूट गये तुम क्या क्या सहते सहते !
रे मन ! कुछ तो कहते !

दुख लिपटा आकर दामन से,
बिछुड़ गये अपने ही तन से;
धीरज टूट गया आशा का, छिल छिल छाले बहते।
रे मन ! कुछ तो कहते !
बिना कहे ही टूट गये तुम क्या क्या सहते सहते !
रे मन ! कुछ तो कहते !

रो रो कर धोया रातों को

रो रो कर धोया रातों को फिर भी तो काली हैं।
अब तो ये काली रातें भी आँखों को भाली हैं॥

नहीं चाहिये मुझे रूप किरणों का चमकीलापन,
मुझे बहुत प्यारा है मेरे अन्धकार का अंजन;
क्या ले करूं चाँद तेरे अम्बर के झिलमिल मोती,
कितनी ही मोती मालायें तोड़ लुटा डाली हैं।

रो रो कर धोया रातों को फिर भी तो काली हैं।
अब तो ये काली रातें भी आँखों को भाली हैं॥

मेरा दाग़ मुझे लौटा दे देदे मेरी तड़पन,
तुझे मुबारक रहे चाँद तेरा सुन्दर उजलापन;
काली रातों में मेरी आहों का दर्द भरा है,
इसी दर्द को पीकर नभ की आँखें उजियाली हैं।

रो रो कर धोया रातों को फिर भी तो काली हैं।
अब तो ये काली रातें भी आँखों को भाली हैं॥

नींद नहीं आती है

बिजली सी मन में कोंध कोंध जाती है।
मेरी पलकों में नींद नहीं आती है!

दुनिया सोई है अपने पाँव पसारे,
मैं जगता हूं किस तरह देखते तारे;
चन्दा का उजलापन कितना मैला है,
मेरे आँगन में अन्धकार फैला है;
किरणों की तीली का बेकार मसाला,
मेरे दीपक की बुझी हुई बाती है;

बिजली सी मन में कोंध कोध जाती है।
मेरी पलकों में नींद नहीं आती है!

थपकियाँ हवा देती हैं मेरे तन को,
थपकियाँ मगर कब दे पाई इस मन को?
सपने आँखों में हैं इस कदर समाये,
गत जीवन के सब चित्र उभर हैं आये;
मेरी रातों की नींद चुराने वाले,
क्या कभी तुम्हें भी मेरी सुधि आती है?

बिजली सी मन में कोंध कोंध जाती है।
मेरी पलकों में नींद नहीं आती है!

❀

आँखों को रोने दो

मत रोको आँखों को,
आँखों को रोने दो।
इन पर जो मोती हैं,
लुटने दो खोने दो।

अनजान बहुत थे हम,
ग़म से पहचान हुई ;
यह भी क्या कम है जो,
कुछ तो पहचान हुई ;
सपने से जागे थे,
सपनों में सोने दो।
मत रोको आँखों को,
आँखों को रोने दो।
इन पर जो मोती हैं,
लुटने दो खोने दो।

कल तो मिट जाना था,
हम आज मिट लिए हैं ;
जीने से पहले ही,
अरमान घुट लिए हैं ;
ये दाग़ बड़े गहरे,
मल मल कर धोने दो।

मत रोको आँखों को,
आँखों को रोने दो।
इन पर जो मोती हैं,
लुटने दो खोने दो।

साँसों की गर्मी से,
इस दिल के तार हिले ;
तुम तो ना मिल पाये,
आँसू तो गले मिले ;
जो दर्द उभर आया,
वह दर्द डुबोने दो।

मत रोको आँखों को,
आँखों को रोने दो।
इन पर जो मोती हैं,
लुटने दो खोने दो।

झूठी है ममता

कैसे हो उनसे मेरी समता ?
झूठी है ममता !
चन्दा सूरज वहाँ चमकते हैं,
खुशियों के मधु जाम छलकते हैं;
यहाँ हृदय का बुझा हुआ दीपक,
स्नेह कहाँ ? यह तो है असफलता !
झूठी है ममता !
कैसे हो उनसे मेरी समता ?
झूठी है ममता !
वहाँ सितारों सा अगणित धन है,
जीवन रस से सिंचता यौवन है;
यहाँ टूटती आशा के बल पर,
कैसे दूर करूँ मैं निर्धनता ?
झूठी है ममता !
कैसे हो उनसे मेरी समता ?
झूठी है ममता !
वहाँ बरसते हैं अमृत के घन,
यहाँ मृत्यु के पग करते नर्तन;
किसी समय भी मिटने वाले मन !
तुझे भाग्य की कहाँ मिली क्षमता ?
झूठी है ममता !
कैसे हो उनसे मेरी समता ?

दो पल को ही गा लेने दो

दो पल को ही गा लेने दो।
गाकर मन बहला लेने दो!

कल तक तो मिट जाना ही है;
तन मन सब लुट जाना ही है;

लेकिन लुटने से पहले तो—
अपना रंग जमा लेने दो।

दो पल को ही गा लेने दो।
गाकर मन बहला लेने दो!

फूल खिलखिला कर हँसते हैं,
फिर तो काँटे ही धँसते हैं;

काँटों से पहले फूलों को—
कुछ शृंगार सजा लेने दो।

दो पल को ही गा लेने दो।
गाकर मन बहला लेने दो!

जीवन क्या है ? इक सपना है,
सपने में सब कुछ अपना है;

अपनेपन की इन घड़ियों में—
लघु संसार बसा लेने दो।

दो पल को ही गा लेने दो।
गाकर मन बहला लेने दो!

आज नभ भी रो रहा है

आज नभ भी रो रहा है !

चन्द्रमा की कालिमा को आँसुओं से धो रहा है।
आज नभ भी रो रहा है !

झिलमिलाते मूक तारे छिप गये जाने कहाँ रे ?
चाँदनी भी भाग करके जा छिपी तम के सहारे ;
किन्तु अम्बर तो किसी की याद में दृग खो रहा है।
आज नभ भी रो रहा है !

चन्द्रमा की कालिमा को आँसुओं से धो रहा है।
आज नभ भी रो रहा है !

श्वेत नभ को चुप कराने वायु की परियाँ चली हैं,
बदलियों की डोलियों पर चाँद की किरणें गली हैं ;
रात का काला कलूटा रूप उजला हो रहा है।
आज नभ भी रो रहा है !

चन्द्रमा की कालिमा को आँसुओं से धो रहा है।
आज नभ भी रो रहा है !

मन पंछी घायल पिंजरे में बन्द

मन पंछी घायल पिंजरे में बन्द !
मेरी भग्य रेख पल-पल में पड़ती जाती मन्द !
मन पंछी घायल पिंजरे में बन्द !

बीते दिन अब स्वप्न हो गये कैसे धीर धरूँ मैं ?
मन के सारे भरम खो गये कैसे पीर हरूँ मैं ?
मेरे गीतों ने ही मुझको किया आज पाबन्द !
मन पंछी घायल पिंजरे में बन्द !

मेरी भाग्य रेख पल-पल में पड़ती जाती मन्द !
मन पंछी घायल पिंजरे में बन्द !

कल तक मेरे साथ हँसा जो अब वह चाँद जलाता,
मेरी मजबूरी पर हँसकर पवन चला इठलाता;
राह न कोई सूझ रही है कैसे काटूँ फन्द !
मन पंछी घायल पिंजरे में बन्द !

मेरी भाग्य रेख पल-पल में पड़ती जाती मन्द !
मन पंछी घायल पिंजरे में बन्द !

आज मुझे दुनिया लगती है फीकी जीवन सूना,
मेरे गीत बने अंगारे आज मुझे मत छूना;
मेरे संग लुटेगी जग की शोभा और सुगन्ध !
मन पंछी घायल पिंजरे में बन्द !

मेरी भाग्य रेख पल-पल में पड़ती जाती मन्द !
मन पंछी घायल पिंजरे में बन्द !

जीवन धन से

मन उन्मन तन कम्पन,
कैसा यह सूनापन ?

बोले हे जीवन धन !
तोड़ सकोगे बन्धन ?

यों तो जग माया है,
भ्रम की ही छाया है;

मिटने को बनते हैं;
फिर भी तो तनते हैं;

मृत्यु नहीं केवल सत्,
जीवन भी तो शाश्वत्;

जीवन के दो ही पल,
मिल जाये हो मंगल;

हे आराध्य हृदय के,
मिल लो पहले लय के;

तम का कर उन्मूलन,
दो प्रकाश चिर नूतन।

मन उन्मन तन कम्पन,
कैसा यह सूनापन ?

बोले हे जीवन धन !
तोड़ सकोगे बन्धन ?

नयन नेह ढ़लता है,
विरह स्वयं गलता है;
कैसे मन अपना हो,
तुम ही जब सपना हो;
चरणों में गति भर कर,
भाग्य भागता डर कर;
विधि से लड़ सकता हूँ,
जग से अड़ सकता हूँ;
तुम से रहित न कुछ है,
तुम हो तो सब कुछ है;
निष्क्रिय लय का गुंजन,
नहीं चाहता यौवन।

मन उन्मन तन कम्पन;
कैसा यह सूनापन?
बोलो हे जीवन धन!
तोड़ सकोगे बन्धन?

दर्द बहा है हृदय तोड़ कर

दर्द बहा है हृदय तोड़ कर, नाश चल पड़ा भाग्य फोड़ कर।

चली आज यह कैसी आँधी ?
जिसने सभी दिशायें बाँधीं;
नीड़ गिरा डाली से मेरी,
सुख आशा के स्वप्न तोड़कर !

दर्द बहा है हृदय तोड़कर, नाश चल पड़ा भाग्य फोड़ कर।

असफलता ही यदि मेरी थी,
फिर क्यों की इतनी देरी थी ?
मृग-मरीचिका से आखिर में,
हारा यौवन बहुत होड़ कर !

दर्द बहा है हृदय तोड़ कर, नाश चल पड़ा भाग्य फोड़ कर।

सीमाओं टकराओ मत तुम !
निरखो अन्त बैठ कर गुमसुम,
जिसे किया था जिया निछावर,
वही चल पड़ा हिया मोड़ कर !

दर्द बहा है हृदय तोड़ कर, नाश चल पड़ा भाग्य फोड़ कर।

नील गगन में दीप जले हैं

मेरे भाव अभाव पले हैं।
नील गगन में दीप जले हैं।

व्यर्थ भाग्य लिपि रूठ रही हो,
छल में पड़ कर फूट रही हो;
मेरा तो तम ही अपना है,
शेष सभी कुछ तो सपना है;
ज्योति कहाँ कहने ही भर को,
अन्धकार के कर उजले हैं।

मेरे भाव अभाव पले हैं,
नील गगन में दीप जले हैं।

दीपक के नीचे भी तम है,
फिर क्या चिन्ता फिर क्या गम है?
जो शाश्वत है, जो नूतन है,
उससे डरना पागलपन है;
भाव अभाव भरोगे कैसे,
सारे साधन आप गले हैं।

मेरे भाव अभाव पले हैं।
नील गगन में दीप जले हैं।

मैं भटकता हूँ किसी की राह में

घुट रहा है प्यार मन की दाह में, मैं भटकता हूँ किसी की राह में।

ज़िंदगी से क्या करूँगा पूछकर
मौत भी माँगे मुझे मिलती नहीं,
चाँदनी खिलती अँधेरी गोद में
किंतु मेरे पास तो हिलती नहीं,
मंज़िलों को चूमने वाले क़दम
आज डूबे हैं किसी रफ़्तार में,
मौनता के साथ साँसों की सदा
कह रही है हारती हूँ प्यार मैं।
बोल दो बरबादियों मेरी मुझे!
क्या यही उपहार मिलता चाह में?

घुट रहा है प्यार मन की दाह में, मैं भटकता हूँ किसी की राह में।

अब किसी से क्या करूँ शिकवा गिला
जब कि मेरी साँस भी मेरी नहीं,
किस तरह अधिकार का दावा करूँ
भाग्य ने खुद ही नज़र फेरी कहीं।
धड़कनों ने साज छेड़ा तो सही
आँसुओं ने पर कहाँ रोकी झड़ी?
आज दामन को सँभालूँ किसलिये
जबकि बिखरी टूट मोती की लड़ी,
शेष अब मुझको यही चिंता बड़ी
कहीं वह सुलगे न मेरी आह में!

घुट रहा है प्यार मन की दाह में, मैं भटकता हूँ किसी की राह में।

मेरे पंख काट क्यों डाले ?

मुझे प्यार करने से पहले मेरे पंख काट क्यों डाले ?
मेरी मुक्त साँस के ऊपर लगा दिये सोने के ताले।

मजबूरी से इस पिंजरे में क़ैद हुआ है मेरा यह तन,
लेकिन इस निष्ठुर बन्धन में क्या बंदी होगा मेरा मन ?

गिरि शृंगों के निर्झर लेकर देते हो झूठा गंगा जल,
मेरे कल का सपना लेकर अपने बल का दिखा रहे कल;
मेरे मूक ताप से सँभलो मेरा मुखर तोड़ने वाले।

मुझे प्यार करने से पहले मेरे पंख काट क्यों डाले ?
मेरी मुक्त सांस के ऊपर लगा दिये सोने के ताले।

कल तक मैंने आजादी के जिस वाणी से गीत सुनाये,
आज गुलामी में वह वाणी कैसे नया तराना गाये ?

मुक्त पवन पर बैठ गगन के आँचल को छूने वाला सिर,
कभी नहीं झुक सकता चाहे जाये अचल हिमालय भी गिर;
मुझे लुभाकर अब क्या लोगे फूट रहे हैं मेरे छाले।

मुझे प्यार करने से पहले मेरे पंख काट क्यों डाले ?
मेरी मुक्त साँस के ऊपर लगा दिये सोने के ताले।

बेसुध सुधि

बेसुध होकर सुधि ने तुम्हें पुकारा।
प्राण ! हृदय का हारिल अब तो हारा !

साँझ निशा से विदा मांग कर जाती,
निशा मिलन के गीत मोद से गाती;

किन्तु सितारों का मन तो है रोता,
उनका प्यार कहीं निर्जन में सोता;

खुद को चमकाकर भी तम में रहता,
हाय मिलन से वंचित नभ का तारा।

बेसुध होकर सुधि ने तुम्हें पुकारा।
प्राण ! हृदय का हारिल अब तो हारा !

आशा टूटी नहीं साथ छूटा है,
प्राण समय ने खूब हमें लूटा है;

काल चक्र का रूप बड़ा निर्मम है,
यहाँ मिलन पर पड़ा विदा का भ्रम है;

तुमसे पृथक प्राण अस्तित्व कहाँ है ?
मन के अणु अणु ने गल किया इशारा।

बेसुध होकर सुधि ने तुम्हें पुकारा।
प्राण ! हृदय का हारिल अब तो हारा !

मिटने के सामान जुटा आया हूँ,
और अमरता साथ बाँध लाया हूँ,

लगता है अब तो रहस्य भी लघुतम,
मिलने के दो पल भी कोटि युगों सम;

अब विहाग का गीत न गाओ रे मन !
हार बनेगी जय विश्वास सहारा।

बेसुध होकर सुधि ने तुम्हें पुकारा
प्राण ! हृदय का हारिल अब तो हारा !

निमन्त्रण पत्र

प्राण ने मुझ को बुलाया।
यह निमन्त्रण पत्र आया !
साँस अब रोको न मुझको,
आज प्रिय रथवान आया।

कँपकँपी होती बदन में,
स्वप्न हैं कितने नयन में;
डूब लो अरमान तुम भी.
आज तो मेरी लगन में;
युग युगों की साधना का—
वर लिए वरदान आया।

प्राण ने मुझको बुलाया,
यह निमन्त्रण पत्र आया !
साँस अब रोको न मुझको,
आज प्रिय रथवान आया।

चन्द्र किरणों को लजाती,
झिलमिलाती यह चुनरिया;
अब न पकड़ो साँस छोड़ो,
दूर है पी की नगरिया;
खोल दो घूँघट हटाओ—
लट, मिलन ने गीत गाया।

प्राण ने मुझ को बुलाया।
यह निमन्त्रण पत्र आया !

चन्दा मत इतराओ मन में

चन्दा मत इतराओ मन में !

घर घर का यह रूप चुरा कर फूल रहे हो घन में।
चन्दा मत इतराओ मन में !

झूठ कहा है जग ने तुम में शीतलता है, रस है,
तुम से डर कर गीत तुम्हारे गाता जग बेबस है;
सच तो यह है तुम मुसकाते औरों की तड़पन में।
चन्दा मत इतराओ मन में !

घर घर का यह रूप चुरा कर फूल रहे हो घन में।
चन्दा मत इतराओ मन में !

सोचो तुमने कितने मुख के घूँघट को खोला है ?
कितनी आँखों की लज्जा को किरणों से तोला है ?
आग लगाई है तुमने कितनों के नव जीवन में ?
चन्दा मत इतराओ मन में !

घर घर का यह रूप चुरा कर फूल रहे हो घन में !
चन्दा मत इतराओ मन में !

दाग लगा करके भी कुल को करते फिर नादानी,
कहीं डुबा न डाले तुमको किसी आँख का पानी,
सावधान ! घिर रहीं घटाएँ देखो नील गगन में !
चन्दा मत इतराओ मन में !

घर घर का यह रूप चुरा कर फूल रहे हो घन में !
चन्दा मत इतराओ मन में !

पंछी उड़ो न इतनी दूर

पंछी उड़ो न इतनी दूर !

देखो तुमको ताक रही हैं कितनी आँखें क्रूर !
पंछी उड़ो न इतनी दूर !

पथ अनन्त जीवन का लेकिन फिर भी जीवन थोड़ा,
कहीं लुटा मत देना जो कुछ तिल तिल करके जोड़ा;
नील गगन है ऊपर नीचे धरती की हरियाली,
पंख काटने को आतुर है निठुर दुनिया काली;
उड़ने वाले भूल गये क्या तुम कितने मजबूर।
पंछी उड़ो न इतनी दूर !

देखो तुमको ताक रही हैं कितनी आँखें क्रूर !
पंछी उड़ो न इतनी दूर !

पिंजरे में तुम पले पींजरा छोड़ कहाँ जाओगे ?
आखिर उड़ते उड़ते भी तो इक दिन थक जाओगे;
तब अचला के आकर्षण से खिंचे चले आओगे,
अरे व्यथा की उन घड़ियों में रो रो पछताओगे;
मिटने वाले इस यौवन की गति पर बनो न शूर !
पंछी उड़ो न इतनी दूर !

देखो तुमको ताक रही हैं कितनी आँखें क्रूर !
पंछी उड़ो न इतनी दूर !

जाल बिछाया है अम्बर ने तारों के दानों पर,
कहीं भूल पतिया मत जाना झूठे अरमानों पर;
कान्त कल्पना की मरीचिका में क्यों उड़ते पंछी !
तम का प्रहरी बजा रहा है महा प्रलय की वशी;
चेतो विघ्नों की माया की काया करदो चूर !

पंछी उड़ो न इतनी दूर !
देखो तुमको ताक रही हैं कितनी आँखें क्रूर !
पंछी उड़ो न इतनी दूर !

किसने किसको प्यार किया है

जीवन के दो चार क्षणों में किसने किसको प्यार किया है।
दीपक ने रजनी से पहले अपना ही श्रृंगार किया है।

सन्ध्या के माथे का कुंकुम उसका ही सौभाग्य छीनता,
घन गह्वर से निकल निकल कर चन्दा उसके अश्रु बीनता;
थोड़ी देर चाँदनी खिलकर तम में तन्मय हो जाती है,
जाने किस मग की पगडण्डी बनकर निज में खो जाती है;
पल्लव भी तरु के दामन को इक दिन छोड़ दिया करते हैं,
मधु ऋतु ने पतझड़ से शायद इसीलिये व्यापार किया है।

जीवन के दो चार क्षणों में किसने किसको प्यार किया है।
दीपक ने रजनी से पहले अपना ही श्रृंगार किया है।

प्यार पतंगा दीप-शिखा से करके पंख जलाता अपने,
लेकिन कब उसकी चाहत के पूरे हो पाते हैं सपने;
भ्रम में हैं वे जो उपसर्गों की गाथा को दुहराते हैं,
किस पर कौन मिटा करता है जब सब ही मिटने आते हैं;
अभिनय स्थल है जगती तल यह अभिनेता हैं सारे प्राणी।
सबको चिन्ता पार पहुँचने पर किसने भव पार किया है?

जीवन के दो चार क्षणों में किसने किसको प्यार किया है?
दीपक ने रजनी से पहले अपना ही श्रृंगार किया है।

मेरी निर्मित परवशता

मैं अनगिन उलझन में उलझा; सुलझन से कितनी दूर हुआ।
अपनी निर्मित परवशता में बँधकर, थक कर मजबूर हुआ!

जीवन के रस में मिलकर भी मैं जीवन को हरषा न सका,
जग के दुख में रोया लेकिन उसके सुख में मुसका न सका;
भवसागर तरने की नौका भव ने दी मैंने लौटा दी,
शीतल जल की लघु गागर भी अग्नी पर रखकर औटा दी;
छल किया सभी ने औरों से मैंने छल के मन को तोला,
झुक गई तराजू किन्तु कहाँ छल का काला मानस डोला;
बन्धन काटे सीमाओं के पर सीमा पार न कर पाया,
अफसोस सभी कुछ खोकर भी खोने की चाह न भर पाया;
मन ने शृंगार सजाकर भी पतझड़ की ऋतु से प्यार किया,
मेरा सपना कोमलता से टकरा कर चकनाचूर हुआ।
मैं अनगिन उलझन में उलझा, सुलझन से कितनी दूर हुआ।
अपनी निर्मित परवशता में बँधकर, थक कर मजबूर हुआ।

अब तो इन मौन इरादों पर परदा सा पड़ता जाता है,
फिर भी प्राणों में कसकन का कोई कण अड़ता जाता है,
अंजान व्यथा की पगडण्डी पर अचल अचेत पड़े पत्थर,
भारीपन से बोझिल डगमग चरणों का काँप रहा अन्तर;
यद्यपि विश्वास कह रहा है मत रुको झुको मत चले चलो,
बुझना है तुम्हें जरूर किन्तु बुझने से पहले खूब जलो;

मैं सोच रहा हूँ जलना औ बुझना ही क्या जग का क्रम है,
यदि सच है यह तो पगले मन उलझन को सुलझाना भ्रम है;
मेरा जीवन अस्तित्व यदपि अस्तित्व नहीं रखता कोई,
इस महाशून्य में अन्तरमुख होकर भी मन कब क्रूर हुआ।

मैं अनगिन उलझन में उलझा, सुलझन से कितनी दूर हुआ।
अपनी निर्मित परवशता में बँधकर, थककर मजबूर हुआ।

★
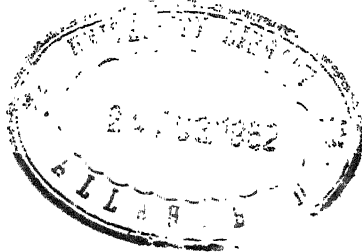
एक प्रश्न !

स्वप्न में खोता रहा जग, रात भर रोता रहा नभ !
सोचता ही रह गया मैं, भोर आ पहुँची यहाँ कब !

रात ने मलमल कलेजा
आह तारों में भरी है,
तारिकाओं की निराशा
फूल पत्तों पर धरी है,

चाँदनी भी व्यंग जैसी
लग रही है जिस समय में,
झुट पुटे प्रत्यूष लोगे—
क्या भला तुम उस समय में ?

शेष है अब भी व्यथा की
और सुनने को कहानी,
क्यों दिखाती हो उषा,
बीते हुए क्षण की जवानी ?

रात के मन का अँधेरा,
उडगनों के आँसुओं से;
धो रहा कवि बन चितेरा !
क्या करोगी तुम भला तब ?

स्वप्न में खोता रहा जग, रात भर रोता रहा नभ
सोचता ही रह गया मैं, भोर आ पहुँची यहाँ कब

प्यार को गहराइयों से डर नहीं

प्यार को गहराइयों से डर नहीं किन्तु डर तो है हमेशा कूल से।
गहन जल की धार पर जो खेलती, नाव वह डूबी किनारे भूल के!

ठोकरें खाकर मुसीबत की घनी जिन्दगी ने थाह लेली प्यार की,
किन्तु दामन के पकड़ते ही समय जीत की बाजी स्वयं ही हार दी;

सिन्धु का भण्डार खाली कर दिया शुष्क नयनों के जरा से बिन्दु ने,
बिन्दुओं के कोप से भयभीत हो लहर के पकड़े चरण हैं सिन्धु ने;

प्यार तो डरता नहीं है देव से, देव के यह लेख काले ही भले,
शूल की जो टेव को पहचानता वह हुआ भयभीत नाजुक फूल से।

प्यार को गहराइयों से. डर नहीं किन्तु डर तो है हमेशा कूल से।
गहन जल की धार पर जो खेलती, नाव वह डूबी किनारे भूल के।

गहन तम की छातियों को चीरकर चाँद बदली से सदा डरता रहा,
मंजिलों की चोटियों को पार कर चाँदनी का रूप भी झरता रहा;

रोज ही भू पर नया सौन्दर्य है किन्तु भू भयभीत नभ के स्वर्ग से,
स्वर्ग का तो प्यार ही जंजाल है, भूमि का सब कुछ भला है गर्भ से;

प्यार आपत्ति से डरता है नहीं, किन्तु डरता है दया के भार से—
आँधियों में भी अचल रहता सदा किन्तु डर उड़ता भ्रमों की तूल से!

प्यार को गहराइयों से डर नहीं किन्तु डर तो है हमेशा कूल से।
गहन जल की धार पर जो खेलती नाव वह डूबी किनारे भूल के।

साँस की आवाज

साँस की द्रुततर यह आवाज !
हृदय का खोल रही है राज।
चेतना की लहरों की लहर,
व्यथा से टकराती है आज।

प्राण में ले कितनी स्मृतियाँ,
चला हूँ मैं स्वदेश की ओर;
कहाँ है लेकिन वह उल्लास।
भाव के जिसके भींगे छोर;

अतन चाहों को तन की राह,
कहाँ दे पाई अपना प्यार ?
नीड़ बन बन कर मिटे अनेक,
स्वप्न ही रहा स्वप्न का भार;

शान्ति सन्तोष सदा अज्ञात
अमंगल आशंका से भरे,
हृदय के घट में अचला भक्ति
डूबती जाती सहित समाज !

साँस की द्रुततर यह आवाज !
हृदय का खोल रही है राज !
चेतना की लहरों की लहर,
व्यथा से टकराती है आज।

नयन शतदल की तरह खिले;
मगर मधु से रीते ही रहे;
निराशा का अमृतमय विष,
सदा से यह पीते ही रहे;

यह सच है घर अब दूर नहीं,
किन्तु आतुर मन उन्मन है,
कहाँ किसका कैसा घर है?
नाश का ताण्डव नर्तन है;

उमंगों से कह दो रे मन!
छोड़ दें अब तो मेरा साथ;
अन्यथा असफलता का ही—
पहनना होगा तममय ताज।

साँस की द्रुततर यह आवाज!
हृदय का खोल रही है राज।
चेतना की लहरों की लहर;
व्यथा से टकराती है आज।

प्रिये तुम्हारे लिये जला हूँ

प्रिये तुम्हारे लिये जला हूँ और जलूँगा आगे भी।
मेरे जलने के इस क्रम से राख अमा हो जावेगी।।

क्रूर नियति की निर्दय झंझा कोमल उर करती घायल,
किन्तु मुझे गति दे देती है प्राण तुम्हारी लघु पायल;
निशि दिन आठों याम जन्म के और मरण के यह बन्धन,
मुझे बाँधकर बाँध न पाते आखिर थक होते उन्मन;
स्नेह प्राण का बना साँस की बट डाली मैंने बाती,
घट के लघु दीपक में आहों की जलती जाती थाती;
निजता का अस्तित्व मिटा कर जलता जाता सिहर सिहर,
चली चलो प्रिय चिन्ह छोड़ती पगडंडी मुसकावेगी।

प्रिये तुम्हारे लिये जला हूँ और जलूँगा आगे भी,
मेरे जलने के इस क्रम से राख अमा हो जावेगी।

मैं जलता ही रहूँ और तुम बढ़ती रहो निरन्तर ही,
मानापमान, हर्ष शोक में रहे न कोई अन्तर ही;
जग कहता है भला या बुरा आज न इसकी चिन्ता है,
प्राण तुम्हारा प्यार प्राप्त कर रुचता नहीं नियन्ता है;
मन की धड़कन की शहनाई कानों में रस घोल रही,
प्राण दिये की एक किरण ही भ्रम का पर्दा खोल रही;
बहुत बुझाया मगर मृत्यु से बुझा नहीं मेरा दीपक—
प्रियतम के पथ का प्रकाश बन जला जलेगा आगे भी।

प्रिये तुम्हारे लिये जला हूँ और जलूँगा आगे भी,
मेरे जलने के इस क्रम से राख अमा हो जावेगी।

इस मन को आग लगा दूँगा

मैं तुम्हें प्यार करने वाले इस मन को आग लगा दूँगा।
स्मृतियों की उच्च अटारी के शुभ चिंतक काग भगा दूँगा।

यह सच है मैंने सब कुछ दे तुमको आराध्य बनाया है,
भावों का मंथन कर तुमको निधियों से सदा सजाया है;
ऊषा की लाली और साँझ की घुँघराली लट की उलझन,
तारों की झिलमिल चमक, दूज के चन्दा की तिरछी चितवन;
रति के अधरों का रस, मधु ऋतु के यौवन का नव आकर्षण,
सब से ही मैंने करा दिया है प्राण तुम्हारा अभिनन्दन;
इनसे भी मूल्यवान मेरे कवि ने जो अर्घ्य चढ़ाया है,
जिस पर तुम फूल रहे हो धन! वह मेरे मन की छाया है;
मैंने जो कुछ था किया तुम्हारे लिये दिया श्रम संचित फल—
अब आज उसी फल में प्रियतम मैं कुत्सित दाग लगा दूँगा।

मैं तुम्हें प्यार करने वाले इस मन को आग लगा दूँगा।
स्मृतियों की उच्च अटारी के शुभ चिंतक काग भगा दूँगा।

मुझको थी बड़ी लालसा यह शचि तुम्हें देखकर आह भरे,
अचला क्या सारा नन्दन भी सिर धुने और फिर वाह करे;
सतियों का निश्चल तेज और गंगा की पावन निर्मलता,
प्रिय तुम्हें देखकर सोचे यह क्या हममें है कुछ दुर्बलता?
मैंने सोचा था तुम पर मैं विधि से भी होड़ लगाऊँगा,
उसकी निर्माण चातुरी पर छन्दों के दाव लगाऊँगा;

पर स्वप्न, स्वप्न ही रहा, नहीं जागृति का उसे मिला सम्बल,
विश्वासों का आधार जरा सी ठोकर से होता घायल;
सागर से अमृत भी निकला लेकिन तुमने विष लिया स्वयं,
अब मैं भी हिय का रस निचोड़, विष के ही भाग जगा दूँगा।
मैं तुम्हें प्यार करने वाले इस मन को आग लगा दूँगा।
स्मृतियों की उच्च अटारी के शुभ चिंतक काग भगा दूँगा।

संसार नियति की शाला है

ससार नियति की शाला है।
जिनका इतिहास निराला है॥

पट ऋतु की दृश्यावलियाँ है,
बहुरगी जिसकी कलियाँ है.

तम औ प्रकाश का आवर्तन,
इसको गति देता है नूतन,

सशय करता पट परिवर्तन,
विश्वास सजाता है जीवन,

कर रही मृत्यु है पटाक्षेप,
जिस पर रहस्य का लगा लेप,

मानव इसका अभिनेता है,
अभिनय मे हँस रो लेता है,

वह सूत्र धार है निराकार,
माया से करता है सिगार,

जड़ जगम सब उसका स्वरूप,
वह है विराट वह है अरूप।

मैं बिना मंजिल के बढ़ता जा रहा हूँ

पन्थ को पहचान कर चलते सभी हैं,
मैं बिना मंजिल के बढ़ता जा रहा हूँ।

रात का टूटा हुआ सपना उषा की,
माँग में भर कर सदा मुसका रहा हूँ।

जग चला करता निशानी पर किसी की,
और मैं अपनी निशानी छोड़ता हूँ।

युग बनाते वे कभी मिटते नहीं हैं,
आज से युग की कहानी मोड़ता हूँ।

चल रहा हूँ क्योंकि चलना काम मेरा,
कह रहे सब यह चलन की रीति कैसी ?

आग के अंगार को भी चूमते हैं,
जानते हैं यह कदम मधु प्रीति कैसी ?

चाहते सब थपकियाँ देकर सुलाना,
किन्तु मन का वेदना तो जागती है।

जागरण के चिन्ह से भयभीत होकर,
सहमती मंजिल कहीं पर भागती है।

चल रहे यों तो सभी हैं इस जगत में,
किन्तु सबका स्वाथ है निश्चित निशानी।

लक्ष्य को रखकर कदम की ठोकरों पर,
मैं चला हूँ साथ ले पागल जवानी।

आंधियाँ आईं, बहुत तूफ़ान आये,
किन्तु मेरे आदमी को छल न पाये।

छोर की हस्ती न बस्ती मानता हूँ,
मैं चला, चलते हुए कुछ गा रहा हूँ।

पन्थ को पहचान कर चलते सभी हैं,
मैं बिना मंजिल के बढ़ता जा रहा हूँ।

रात का टूटा हुआ सपना उषा की,
माँग में भर कर सदा मुसका रहा हूँ।

जग अगर नश्वर हुआ तो शोर क्यों है ?
लक्ष्य की आराधना में बोर क्यों है ?

पन्थ को पहचान कर भी हिचकिचाहट,
आँख की भीगी हुई यह कोर क्यों है ?

मूढ़ जग की रीतियों को चूर करके,
मैं अकेला ही नियति को देख लूँगा।

और पैरों की कुमारी उँगलियों से,
मैं नियति के भाग्य का लेखा लिखूँगा।

यह अंधेरा है नहीं काली लटें हैं,
जो उषा के गाल प्रतिदिन चूमती हैं।

कोष मग का लूटता जो भी पथिक है,
यह उसी को कैद करने घूमती हैं।

किन्तु मैं तो खेलता हूँ इन लटों से,
क्योंकि इनके प्यार ने संसार धोया।

मैल छूटा रख लिया, काली हुईं खुद,
किन्तु जग के पाप का सब भार ढोया।

दाग सीने पर इसी कालौंच के हैं,
जो मुझे गति दे रहे बल दे रहे हैं।

तोड़ सीमा के पुराने नीड को मैं,
प्राण का हारिल उड़ाये जा रहा हूँ।

पन्थ को पहचान कर चलते सभी हैं,
मैं बिना मंजिल के बढ़ता जा रहा हूँ।

रात का टूटा हुआ सपना उषा की,
माँग में भर कर सदा मुसका रहा हूँ।

★

प्यार करता हूँ सदा कमजोरियों को

जिन्दगी के सत्य से परिचित बहुत हूँ,
किन्तु फिर भी तो सदा अंजान हूँ मैं।

प्यार करता हूँ सदा कमजोरियों को,
क्योंकि अपने आप में इन्सान हूँ मैं।

आज भी कमजोरियाँ शृंगार बन कर,
नील नभ के मोतियों से झाँकती हैं।

हिम कणों के रूप में गिरकर धरा पर,
फूल पल्लव के प्रणय को आँकती हैं।

देख लो कमजोरियों का दाग अब भी,
चाँद सीने से लगाये घूमता है।

बादलों के गहन गह्वर से निकल कर,
कौन जाने किस अधर को चूमता है?

कभी इन कमजोरियों से त्राण पाकर,
कौन जाने बन गया हो वह स्वयंभू।

जो चिरन्तन सत्य है सम्पूर्ण जग का,
वह बना हो किसी दिन मेरा अहम् छू।

बांधती निस्सीम को भी छोर में जो,
मुक्ति वह कमजोरियों में ही पली है।

मुक्ति की पायल चरण में डाल करके,
झूमती गाती कहीं अचला चली है।

पल रहे कमजोरियों की गोद में सब,
किन्तु फिर भी आप खुद को छल रहे हैं

देखकर जग की जघन्य कृतघ्नता को,
खिल पड़ी जो अधर पर मुसकान हूँ मैं।

ज़िन्दगी के सत्य से परिचित बहुत हूँ,
किन्तु फिर भी तो सदा अंजान हूँ मैं।

प्यार करता हूँ सदा कमजोरियों को,
क्योंकि अपने आप में इन्सान हूँ मैं।

जग छिपाता है निजी कमजोरियों को,
पाप करता है फिर भी पुण्यात्मा है।

ओढ़ करके शेर की बपु खाल तन पर,
स्यार बन सकता है क्या वीरात्मा है?

बस यही है फर्क मुझ में और जग में,
मैं न अच्छे औ बुरे को मानता हूँ।

आदमी हूँ, आदमी की यह महत्ता,
छिप नहीं सकती इसे मैं जानता हूँ।

जग करे उपहास या बदनाम करदे,
यह कदम तो चल पड़े अब कब रुकेंगे?

आंधियाँ आयें कि झंझावात होवे,
काफिले जो चल पड़े चलते रहेंगे।

मृत्यु से परिचय पुराना हो चुका है,
इसलिये जीवन उसी से खेलता है।

जो हृदय के तार को झंकार देते,
यह हृदय उनके लिये सब झेलता है।

पी चुका हूँ मान औ अपमान को मैं,
किन्तु फिर भी प्यास बाकी रह गई है।

सामने साकी के प्यासा रह गया जो,
बस उसी अभिव्यक्ति का अरमान हूँ मैं।

जिन्दगी के सत्य से परिचित बहुत हूँ,
किन्तु फिर भी तो सदा अंजान हूँ मैं।

प्यार करता हूँ सदा कमजोरियों को,
क्योंकि अपने आप में इन्सान हूँ मैं।

★

मैंने जीवन अधिकार बहुत भोगा है

मैंने जीवन अधिकार बहुत भोगा है,
इसलिये मौत को प्यार किया करता हूँ।
तुम जिस जग को अस्तित्वहीन कहते हो,
मैं उस जग से मनुहार किया करता हूँ।
तुम कहते मिट्टी पानी से निर्मित है,
इस जग की कोमल काया का सुन्दरपन।
मिट्टी में मिट्टी मिल जाती है इक दिन,
पानी में पानी होता जीवन दर्शन।
मैं कहता आँखें रहते भी तुम अन्धे,
जो नहीं देखते मिट्टी पानी का क्रम।
मिट्टी में नव निर्माण छिपा रहता है,
निर्मित होने को पानी बन बहता श्रम।
यह श्रम न कभी बेकार हुआ करता है,
अन्तर का घूँघट खोल देख लो चाहे।
यह जीवन औ यह मृत्यु एक हैं इनकी—
हैं बहुत अनोखी जादूगरनी राहें।
फिर नाश और विध्वंस कहाँ जग मिथ्या,
इन्सान बुलबुला है क्यों कहते हो तुम?
मेरी हस्ती है नहीं भोर तारा,
जो छिप जायेगा नजर बचा लोगे तुम;

मैं कहता हूँ कुछ सत्य और भी सुन लो !
पर सत्य सदा कड़वा होता है गुन लो !
तुम को न मिले अंगूर हुआ जग खट्टा,
अब खट्टा खट्टा कहकर ही जल भुन लो !
पर इतना रखना याद समय की गति में।
यह पाप और यह पुण्य तुम्हारे झूठे—
निकलेंगे, जिनमें आज परिस्थितिवश हो,
तुम आत्मघात कर रहे स्वयम् से रूठे।
मेरे सच को नादान बहाना कह कर,
जीवन से कितनी दूर जा रहे हो तुम।
मैं तुम को कैसे छोड़ मौन हो बैठूँ;
तुम मिलो वही उपचार किया करता हूँ।
मैंने जीवन अधिकार बहुत भोगा है,
इसलिये मौत को प्यार किया करता हूँ।
तुम जिस जग को अस्तित्वहीन कहते हो,
मैं उस जग से मनुहार किया करता हूँ।

प्रिय से अनुरोध

वास्ता मत दो प्रणय का आज जाने दो मुझे,
आखरी ही बार अपना शव उठाने दो मुझे।
चाह अब बाकी न कोई रह गई क्यों रोकती ?
आह की इस मूक भाषा में सजनि क्यों टोकती ?
देखती हो रोज ही जग जल रहा है आग में,
मिट रहा है चांद भी अपने जहां के दाग में।
रोज ही तो रूप को पुचकारता श्मशान है,
रोज ही इन्सान की मुस्कान का बलिदान है।
किसलिए फिर आँख की यह कोर भीगी प्राण है,
जुल्म औ शोषण भरे जग में कहाँ पर त्राण है।
स्वर्ण पिंजरे में फँसी है आज जो इन्सानियत,
खोल दरवाजा उसे नभ में उड़ाने दो मुझे।
वास्ता मत दो प्रणय का आज जाने दो मुझे,
आखरी ही बार अपना शव उठाने दो मुझे।
क्या करूँगा जानकर अब प्यार की गहराइयाँ,
पार कर डाली है मैंने तो वयस की खाइयाँ।
कह रहीं शाहेजहाँ के ताज की सौगन्ध है,
मर गई मुमताज पत्थर में कहाँ अब गन्ध है।
मैं शहंशा हूँ नहीं जो पत्थरों से खेल लूँ,
शक्ति कोल्हू कला की जिन्दगी पे पेल दूँ।

क्या पता कितने करों की चूड़ियां टूटी यहाँ,
औ श्रमकारों की किस्मत प्यार ने लूटी यहाँ।
ताज है यह बादशा का राज कितने खून का,
दाग अनगिनती लगे जो वह छुटाने दो मुझे।
वास्ता मत दो प्रणय का आज जाने दो मुझे,
आखरी ही बार अपना शव उठाने दो मुझे।
इक दिन मैंने भी तारों के जहाँ से होड़ ली,
इस तरह अन्जान में ही स्वयं किस्मत फोड़ ली।
पाँव में पायल मगर झंकार में प्रिय सार क्या?
जो पराजय में पला हो उस हृदय का प्यार क्या?
प्यार बिकता है यहाँ बाजार में दूकान पर,
दाम चढ़ जाते यहाँ इन्सान के ईमान पर।
सब तरफ वैषम्यता का बोलबाला दीखता,
झूठ का भगवान जिस पर पाप का मल लीपता।
प्राण अब युग लाश पर निर्माण का डालो कफ़न,
जागरण के नवचरण पर बलि चढ़ाने दो मुझे।
वास्ता मत दो प्रणय का आज जाने दो मुझे,
आखरी ही बार अपना शव उठाने दो मुझे।

●

मन का तूफान

मिट्टी का तन रोक रहा है मन में जो तूफान उठा है।
भावों का मंथन करने को इच्छाओं का यान छुटा है॥
जीवन के रेतीले तट कब तक रोकोगे प्रबल थपेड़े?
सामाजिक मर्यादाओं के घाट रूढ़िगत टेढ़े मेढ़े?
सांसों की भैरव झंझा में दीपक कब तक जल पायेगा?
यौवन की उत्ताल तरंगों में क्या यौवन कल पायेगा?
बोलो असफलता के आंसू क्या सागर को ठहरा दोगे?
आशा की सुकुमार पताका इस अनंत पर फहरा दोगे?
आज व्यथा ने कूल तोड़ देने की जो मन में ठानी है,
क्या तुम उसको रोक सकोगे यह कहकर बहता पानी है।
युग युग के श्रम सीकर संचित होकर आज पुकार रहे हैं,
अरे बचाओ कोई आकर शर के सहित कमान छुटा है।
मिट्टी का तन रोक रहा है मन में जो तूफान उठा है,
भावों का मन्थन करने को इच्छाओं का यान छुटा है।
यों तो सीमावान हृदय उत्थान पतन को देख चुका है,
विधि के श्वेत श्याम पृष्ठों पर निज कृति के लिख लेख चुका है
किन्तु आज इसकी सीमा से एक और सीमा टकराई,
टुकड़े टुकड़े होकर उर ने अपनी सारी आन गवाई।
भावों का उठ रहा बवंडर काँप रहा है थर थर अम्बर,
जड़ अचला भी जड़ता तजकर घूम रही है गति पर सत्वर।

कौन भला उबरा है जग में मन के दुर्गम भंवर जाल से !
दो पल भी सन्तोष पा सका कौन यहाँ इस महाकाल से ?
धीरजहीन हृदय कहता है मिट्टी के तन मिट्टी हो लो
तेरे ही स्वदेश में मेरे सुख का सब सामान लुटा है
मिट्टी का तन रोक रहा है मन में जो तूफान उठा है
भावों का मंथन करने को इच्छाओं का यान छुटा है

२६ जनवरी

आज कसम खाई थी हमने आजादी के लाने की,
आज कसम खाते हैं हम फिर भू को स्वर्ग बनाने की।
सच है ये मजबूत भुजायें आजादी ले आई हैं,
किन्तु ज्योति की किरण शोक के उर में अभी समाई है।
अम्बर का नीलापन भूखों की आहों से जलता है,
अचला का यह रूप मुक्ति की गंगा में भी गलता है।
हाहाकार रुदन की काली लट जीवन को चूम रही,
कितना है आश्चर्य जवानी छल में पल कर झूम रही।
आओ आज चीर दें निर्मम अन्धकार की छाती को,
फिर से प्राण फूँककर करदें जगमग जग की बाती को।
मन की नूतन कान्त कामना प्रिय स्वदेश पर बलि करदें,
हिम्मत से फिर करें साथियों काया कल्प जमाने की।
आज कसम खाई थी हमने आजादी के लाने की,
आज कसम खाते हैं हम फिर भू को स्वर्ग बनाने की।
तारों की मुस्कान धरा के कण-कण पर बिखरी होगी,
चंदा की चांदनी हृदय का सम्बल पा निखरी होगी।
रंग बिरंगी ओढ़ चुनरिया धरती जब मुसकायेगी,
नभ से मेघों की डोली तब उमड़ घुमड़ कर आयेगी।
बरसेगा रस रंग श्याम युग युग की तब मिट जायेगी,
बिछड़े हुए पथिक को मंजिल आकर गले लगायेगी।

चरणों के उठते ही झुक जायेगा अचल हिमालय भी,
सिर्फ देव ही क्यों छल के झुक जायेंगे देवालय भी।
शील और सन्तोष प्यार की सेज बिछाने आयेंगे,
सुख करता होगा कोशिश जन के मन में बस जाने की।
आज कसम खाई थी हमने आजादी के लाने की,
आज कसम खाते हैं हम फिर भू को स्वर्ग बनाने की।

★

युग की आवाज

पत्थर की सुन्दर प्रतिमा का युग ने परदा खोला,
आज बदलना ही होगा बूढ़ी दुनिया का चोला।
तिल तिल करके जलने वाला यौवन धधक उठा है,
लाल लाल लपटों से नीला नभ भी दमक उठा है।
चमकीले तारे टकराकर चूर चूर होते हैं,
करुणा के सब स्रोत स्वयं को रोक क्रूर होते हैं।
झेल सकेगा क्या जग परिवर्तन के प्रबल थपेड़े?
किसमें साहस खेल समझकर अरमानों को छेड़े।
अचल हिमालय बोल अचलता क्या अब रह पायेगी?
जागा है इन्सान संभल यह चोटी ढह जायेगी।
जुल्म और शोषण ने मिलकर बहुत खेलली होली,
अरे जमाने तेरी मिट्टी जलती बनकर शोला।
पत्थर की सुन्दर प्रतिमा का युग ने परदा खोला,
आज बदलना ही होगा बूढ़ी दुनिया का चोला।
झूठे मूढ़ विचार आंधियों से उड़ते जाते हैं,
महा मरण के भरम जिन्दगी से मुड़ते जाते हैं।
मन्दिर के यह शिखर मस्जिदों के यह ऊँचे गुम्बज,
कांप रहे हैं थर थर डर से धैर्य शील सारा तज।
पत्थर का भगवान सोचता है यह मन के अन्दर,
"कैसे रह सकता हूँ जीवित भेदभाव को तजकर।

मेरा छल मेरा प्रपंच क्या केवल सपना ही है,
खुद के निर्मित भेदभाव में मुझको तपना ही है।
सचमुच क्या इन्सान राज को मेरे जान गया है,
काले पत्थर की प्रतिमा का सिंहासन है डोला।
पत्थर की सुन्दर प्रतिमा का युग ने परदा खोला,
आज बदलना ही होगा बूढ़ी दुनिया का चोला।
थोथा है देवत्व मनुज का सत्य सदा नूतन है,
जीवन का सौभाग्य इन्दु मानव स्वदेश का धन है।
वह मानव युग की वंशी की तान सुनाने आया,
सावधान हो बूढ़ी दुनिया अन्त समय है आया।
तेरी पत्थर की यह नैया डूबेगी निश्चय ही,
नव युग की इस नव वेला में मनु की होगी जय ही।
सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारे नभ के अब अंजान न होंगे,
मंजिल से भूले पंथी पथ से अन्जान न होंगे।
पाहन के यह अंश मनुज की सुन्दर सत्य कला बन,
अचला का शृंगार करेंगे युग ने नव रस घोला।
पत्थर की सुन्दर प्रतिमा का युग ने परदा खोला,
आज बदलना ही होगा बूढ़ी दुनिया का चोला।

★

इन गीतों में दर्द बहुत पर प्यार कहाँ है।

विरह मिलन के इन गीतों में दर्द बहुत पर प्यार कहाँ है,
जिस स्वर पर छवि लुटे स्वरों की उस स्वर की झंकार कहाँ है।
सदा खेलता रहा जिन्दगी से मैं अपनी आँख मिचौली,
और जवानी ने जी भर कर मुझसे की है सदा ठिठोली।
आँख मूँद कर मैंने जग में साँसों का धन लुटा दिया है,
बदनामी के लिए नाम से यश का चन्दन छुटा दिया है।
पूछ रही हो आज प्रियतमे यह मैंने किसलिए किया है?
दिल देने वालों से मैंने कभी नहीं परहेज किया है।
यश तो केवल दो दिन का है लेकिन अपयश साथ निभाता,
साथ निभाना जो मंजिल तक उससे कैसे तोड़ूं नाता।
खोलो आज भेद के परदे बोलो वाणी को मत तोलो,
सजनि ! टूटकर भी न टूटे उस बन्धन का तार कहाँ है?
विरह मिलन के इन गीतों में दर्द बहुत पर प्यार कहाँ है?
जिस स्वर पर छवि लुटे स्वरों की उस स्वर की झंकार कहाँ है?
माना रूप बहुत है जग में पर सुन्दर मन तो थोड़े हैं,
सुन्दरता में डूब उतर कर मैंने कुछ मोती जोड़े हैं।
चाह रहा है नभ खरीदना मेरी इन मोती लड़ियों को,
बना गले का हार चांदनी पहन रही मेरी कड़ियों को।
और रात यह सोच रही है क्यों न सितारे इन पर वारूँ,
अपने उर के अंगारों को आज आरती बना उतारूँ।

उलट बदलियों के घूँघट को चन्दा रूप चुराने जाता,
फिर भी अन्धा जग कहता है नभ को सुन्दरता का दाता।
कैसे इस बूढ़ी दुनिया की रीति निभाऊँ गीत सुनऊँ,
गीतों को जो ज्वाल बना दे प्रियतम वह अंगार कहाँ है?
विरह मिलन के इन गीतों में दर्द बहुत पर प्यार कहाँ है?
जिस स्वर पर छवि लुटे स्वरों की उस स्वर की झंकार कहाँ है?
सच है मैंने आहों का विष पिला पिलाकर दिल पाला है,
सदा उमंगों के कदमों पर रखी तरंगों की हाला है।
सावधान ! मत छूना बाले महा मरण के इस प्याले को,
बार बार क्यों देख रही हो एक बार देखे भाले को।
कैसे कसम रोक पायेगी सीमाहीन हृदय का पानी,
असफलता के आँसू पीकर विद्रोही बन रही जवानी।
धीरे धीरे डूब रहा जग आँखों के इस रत्नाकर में,
कहीं डुबा मत देना मन के सिंहासन को बीच भंवर में।
नहीं करो हठ अरी हठीली छोड़ो नाव निडर होकर के,
डुबा सके जो मेरी हस्ती सागर में वह धार कहाँ है?
विरह मिलन के इन गीतों में दर्द बहुत पर प्यार कहाँ है?
जिस स्वर पर छवि लुटे स्वरों की उस स्वर की झंकार कहाँ है?

★

कुछ पल

जीवन में कुछ पल ऐसे भी आते हैं,
जब हम बरबस ही चंचल हो जाते हैं।
मानव मन बँध जाये कोमल बंधन में,
इसलिए प्यार उपजाया विधि ने मन में।
सागर असीम होकर भी सीमामय है.
नभ भी अनन्त होकर ही महिमामय है।
उठतीं सागर में ऐसी भी लहरें कुछ,
नभ का सारा सौन्दर्य जहाँ जाता पुछ।
मन में जागा सौन्दर्य नहीं मिटता है,
फिर भी मन के बिश्वास बदल जाते हैं।
जीवन में कुछ पल ऐसे भी आते हैं,
जब हम बरबस ही चंचल हो जाते हैं।
होती यदि जग में स्थिरता क्यों भू चलती ?
अचला पद पाकर भी क्यों निज को छलती ?
सचमुच ही अचला भक्ति कहीं मिल जाये,
जीवन का सत् शिव सुन्दर बन खिल जाये।
गतिशील हृदय गति पाता तोष न पाता,
वह क्या है ? किसका है ? यह सोच न पाता।
अधिकार अहम् का या कि प्यार का है यह,
तन्मय होकर भी प्राण सँभल जाते हैं।
जीवन में कुछ पल ऐसे भी आते हैं,
जब हम बरबस ही चंचल हो जाते हैं।

सब कुछ ही खोना है

साँझ का झुटपुटा है
बादलों का जमघट है
और मैं खोया हूँ
सिगरेट के धुएँ में,
दुनिया की निर्ममता
जीने नहीं देती है,
जीने की इच्छा का
खून पिये लेती है,
घिर घिर कर आते हैं—
सन्ध्या के आँगन में
बादल बरस जाते हैं,
दुनिया की आग में लेकिन झुलस जाते हैं।
उसी तरह जैसे यह मेरा मन झुलसा है।
झुलसा हाँ झुलसा मन!
लेकिन कब हुलसा मन!
और इस सन्ध्या का बढ़ता हुआ कालापन,
मन के अरमानों को थपकियाँ देता है,
सोने को कहता है
कैसे मन सो जाये
डरता है, आग की लपटों में वेदना न खो जाये।

वेदना मन की है,
मन के इस धन की है।
जिसने इस जीवन को,
स्मृतियों से ढाँका है।
सिगरेट के धुएँ में,
आकर जो झाँका है।
जिसकी व्याकुलता से,
प्यार तो पलता है।
लेकिन मन जलता है,
साँझ का धुँधलापन।
मेघों का यह रोदन,
व्यर्थ है नीरव मन!
जलता है अपनापन,
पीता जा! पीता जा!
सिगरेट के धुएँ में,
घुट घुट के जीता जा!
थोड़ा सा और सफ़र,
थोड़ी दूर और डगर।
फिर तो बस सोना है,
सब कुछ ही खोना है।